



ISSN Print: 2394-7500
 ISSN Online: 2394-5869
 Impact Factor: 5.2
 IJAR 2020; 6(4): 354-357
www.allresearchjournal.com
 Received: 24-02-2020
 Accepted: 26-03-2020

Dr. Preeti Srivastava
 Assistant Professor,
 Department of Sanskrit,
 Vivekananda College,
 University of Delhi, Delhi,
 India

Dr. Jyoti
 Assistant Professor, School of
 Sanskrit and Indic Studies,
 Jawaharlal Nehru University,
 Delhi, India

Dr. Asheesh Kumar
 Assistant Professor,
 Department of Sanskrit,
 Rajdhani College, University
 of Delhi, Delhi, India

Correspondence Author:
Dr. Asheesh Kumar
 Assistant Professor,
 Department of Sanskrit,
 Rajdhani College, University
 of Delhi, Delhi, India

जल्प की अवधारणा

Dr. Preeti Srivastava, Dr. Jyoti and Dr. Asheesh Kumar

प्रस्तावना

महर्षि गौतम ने न्यायसूत्र में षोडश पदार्थों के अन्तर्गत ग्यारहवें पदार्थ के रूप में जल्प का वर्णन किया है। आचार्य गौतम के अनुसार जल्प का लक्षण इस प्रकार है- “प्रमाणों और तर्कों के द्वारा जो साधन और निषेध से युक्त हो, अपने स्वीकृत सिद्धान्त से विरोध रहित हो, वह प्रतिज्ञा आदि पाँच अवयवों के प्रयोगवाला होना चाहिए और यदि आवश्यकता पड़े तो छल^[1], जाति^[2] और निग्रह स्थानों^[3] से भी साधन और उपालम्भ करने वाला हो ऐसा पक्ष-प्रतिपक्ष का प्रयोग जल्प कहलाता है”^[4] अर्थात् वाद कथा में वादी और प्रतिवादी को जय की इच्छा नहीं रहती है किन्तु जल्प कथा में दोनों को जय की इच्छा रहती है^[5] क्योंकि विजय की कामना से ही प्रतिवादी छल आदि का व्यवहार करता है।

जल्प को समझने के लिए यह साधारण उदाहरण द्रष्टव्य है- विशेष धर्म सम्प्रदाय का व्यक्ति सरल चित्त लोगों को यह समझा रहा था, “देखो, तुम्हारा धर्म चिह्न- जल में तुरन्त ही डूब जाता है। उसने एक बाल्टी जल लिया, उसमें पत्थर के धर्म चिह्न को छोड़कर दिखा दिया और कहा, ‘जो स्वयं तैर नहीं सकता, वह तुमको इस भवसागर से कैसे पार लगायेगा?’ अब उस विशेष धर्म सम्प्रदाय के व्यक्ति ने अपने गले में लटक रही लकड़ी की धर्म चिह्न को लेकर उसी जल की बाल्टी में छोड़कर कहा, “देखा, यह स्वयं तैरती है और यह तुम्हें भी भवसागर को पार करने में आश्रय देगी।” पत्थर के धर्म चिह्न का डूबना और लकड़ी के धर्म चिह्न का तैरना प्रमाण सिद्ध है। तर्क भी ठीक है कि जो स्वयं तैर नहीं सकता, वह दूसरों को कैसे पार लगायेगा। सिद्धान्त भी ठीक ही है कि डूबने वाले दूसरों को कैसे पार करा सकेंगे? इस पर भी यह छल है। क्योंकि भवसागर कोई जल का तालाब नहीं है। साथ ही इस पाप-पुण्यमय क्षेत्र भवसागर से पार होने के लिये न तो पत्थर का धर्म चिह्न और न ही लकड़ी का धर्म चिह्न नौका का काम दे सकते हैं। इन दोनों में से कोई भी समर्थ नहीं। विशेष धर्म सम्प्रदाय का व्यक्ति भीलों से जल्प करता हुआ उनसे छल कर रहा था। भवसागर को पार करने के लिए परमात्मा का नाम नौका है। परमात्मा के गुणों की स्तुति पार करा सकती है। इसमें मिथ्यात्व यह है कि पत्थर का धर्म चिह्न केवल परमात्मा के मनुष्यों द्वारा बनाए गए चिह्न हैं, इनकी स्तुति परमात्मा की स्तुति नहीं है। इसमें छल यह है कि पत्थर का धर्म चिह्न तथा लकड़ी का धर्म चिह्न को परमात्मा रूप में प्रकट किया गया है। ऐसा है नहीं। न ये परमात्मा है और न भवसागर पार कराने में समर्थ है। अतः तत्त्व की रक्षा के लिए जल्प किया जाना चाहिए जहाँ जीतना ही एकमात्र लक्ष्य है एवं तत्त्वज्ञान प्राप्त करने की अभिलाषा जिसमें गौण हो जाए वह जल्प है।

¹ वचनविधातोऽर्थविकल्पोपपत्त्या छलम्। न्या.सू., 1/2/10

² साधर्म्यवैधर्म्याभ्यां प्रत्यवास्थानं जातिः। न्या.सू., 1/2/18

³ विप्रतिपत्तिरप्रतिपत्तिश्च निग्रहस्थानम्। न्या.सू., 1/2/11

⁴ यथोक्तोपपन्नश्छलजातिनिग्रहस्थानसाधनोपालम्भो जल्पः। न्या.सू., 1/2/2

⁵ विजिगीयुर्जल्पवितण्डाभ्यां प्रत्यवस्थेयः। न्या.पा., 1/2/1, पृ. 47

महर्षि गौतम ने न्यायसूत्र में षोडश पदार्थों के अन्तर्गत ग्यारहवें पदार्थ के रूप में जल्प का वर्णन किया है। आचार्य गौतम के अनुसार जल्प का लक्षण इस प्रकार है- “प्रमाणों और तर्कों के द्वारा जो साधन और निषेध से युक्त हो, अपने स्वीकृत सिद्धान्त से विरोध रहित हो, वह प्रतिज्ञा आदि पाँच अवयवों के प्रयोगवाला होना चाहिए और यदि आवश्यकता पड़े तो छल [6], जाति [7] और निग्रह स्थानों [8] से भी साधन और उपालम्भ करने वाला हो ऐसा पक्ष-प्रतिपक्ष का प्रयोग जल्प कहलाता है” [9] अर्थात् वाद कथा में वादी और प्रतिवादी को जय की इच्छा नहीं रहती है किन्तु जल्प कथा में दोनों को जय की इच्छा रहती है [10] क्योंकि विजय की कामना से ही प्रतिवादी छल आदि का व्यवहार करता है।

जल्प को समझने के लिए यह साधारण उदाहरण द्रष्टव्य है- विशेष धर्म सम्प्रदाय का व्यक्ति सरल चित्त लोगों को यह समझा रहा था, “देखो, तुम्हारा धर्म चिह्न- जल में तुरन्त ही डूब जाता है। उसने एक बाल्टी जल लिया, उसमें पत्थर के धर्म चिह्न को छोड़कर दिखा दिया और कहा, ‘जो स्वयं तैर नहीं सकता, वह तुमको इस भवसागर से कैसे पार लगायेगा?’ अब उस विशेष धर्म सम्प्रदाय के व्यक्ति ने अपने गले में लटक रही लकड़ी की धर्म चिह्न को लेकर उसी जल की बाल्टी में छोड़कर कहा, “देखा, यह स्वयं तैरती है और यह तुम्हें भी भवसागर को पार करने में आश्रय देगी।” पत्थर के धर्म चिह्न का डूबना और लकड़ी के धर्म चिह्न का तैरना प्रमाण सिद्ध है। तर्क भी ठीक है कि जो स्वयं तैर नहीं सकता, वह दूसरों को कैसे पार लगायेगा। सिद्धान्त भी ठीक ही है कि डूबने वाले दूसरों को कैसे पार करा सकेंगे? इस पर भी यह छल है। क्योंकि भवसागर कोई जल का तालाब नहीं है। साथ ही इस पाप-पुण्यमय क्षेत्र भवसागर से पार होने के लिये न तो पत्थर का धर्म चिह्न और न ही लकड़ी का धर्म चिह्न नौका का काम दे सकते हैं। इन दोनों में से कोई भी समर्थ नहीं। विशेष धर्म सम्प्रदाय का व्यक्ति भीलों से जल्प करता हुआ उनसे छल कर रहा था। भवसागर को पार करने के लिए परमात्मा का नाम नौका है। परमात्मा के गुणों की स्तुति पार करा सकती है। इसमें मिथ्यात्व यह है कि पत्थर का धर्म चिह्न केवल परमात्मा के मनुष्यों द्वारा बनाए गए चिह्न हैं, इनकी स्तुति परमात्मा की स्तुति नहीं है। इसमें छल यह है कि पत्थर का धर्म चिह्न तथा लकड़ी का धर्म चिह्न को परमात्मा रूप में प्रकट किया गया है। ऐसा है नहीं। न ये परमात्मा है और न भवसागर पार कराने में समर्थ है।

जल्प का प्रयोजन

तत्त्व की रक्षा के लिए जल्प किया जाना चाहिए जहाँ जीतना ही एकमात्र लक्ष्य है एवं तत्त्वज्ञान प्राप्त करने की अभिलाषा जिसमें गौण हो जाए वह जल्प है।

क्यों सूत्रकार ने षोडश पदार्थों में जल्प का परिगणन किया? क्यों मुमुक्षुओं को जल्प कथा में रुचि रखनी चाहिए? इस सम्भावित शंका के उत्तर में महर्षि गौतम कहते हैं- “तत्त्वनिर्णय सम्पादन करने के लिए जल्प” का प्रयोग किया जाता है। दृष्टान्त के माध्यम से स्पष्ट करते हैं जिस प्रकार जब एक खेत में बीज के अङ्कुर आ जाते हैं तब गाय-महिष आदि से उन अङ्कुरों को बचाने के लिए जैसे काँटे वाली डाल से खेत को घेरकर उन अङ्कुरों की रक्षा की जाती है उसी तरह से मुमुक्षु व्यक्ति को अपने तत्त्वनिश्चय की रक्षा के लिए आवश्यकता होने पर जल्प कथा करनी चाहिए। तत्त्वनिर्णय तो वादाधीन ही है परन्तु वाद के मध्य में उपस्थित होने वाले विरोधी मत जो कि तत्त्वनिर्णय में बाधक हैं, उनका निराकरण जल्प, वितण्डा के द्वारा किया जाता है। नास्तिकों द्वारा विपरीत पक्ष का समर्थन किये जाने पर तत्त्वनिश्चय में हानि होने लगती है और तब तत्त्वज्ञान की रक्षा के लिये जल्प का आश्रय लेना आवश्यक हो जाता है। गौतम के तात्पर्य को स्पष्ट करते हुए भाष्यकार कहते हैं कि वाद में शास्त्रों के द्वारा पहले तत्त्वों को सुन लेने पर शिष्य उस विषय की परिपक्वता के लिये गुरु के उपदेश में प्रवृत्त होता है। इन लोगों के समीप में नास्तिकगण उसके विपरीत पक्ष का समर्थन करते हैं जिससे तत्त्वनिश्चय में हानि होती है। अतएव उस तत्त्वनिश्चय की रक्षा के लिए मुमुक्षुओं को भी जल्प कथा का आश्रय लेना पड़ता है जिससे नास्तिक को निरस्त किया जा सकता है किन्तु धन लाभ, समाज में आदर और ख्याति के लाभ के लिए इन कथाओं की कुछ भी उपयोगिता नहीं है। [11]

तात्पर्यटीकाकार वाचस्पति मिश्र भी भाष्यकार के मत से सहमत होते हुए कहते हैं कि कितने साहसिक नास्तिक सद्बुद्धि में विरक्ति के कारण अथवा लाभ, पूजा तथा ख्याति की कामना से नास्तिकों के ऊपर आक्रमण करते हैं और वेद, ब्राह्मण आदिक का खण्डन करते हैं जिससे समाज में और धर्मरक्षक राजाओं में मतिविभ्रम उपस्थित होता है और प्रजावर्ग में इससे धर्मसङ्कट की आपत्ति हो जाती है इससे निवृत्ति के लिए आस्तिक पण्डित समाज तत्काल में जल्प और वितण्डा से उस नास्तिक को पराजित करता है किन्तु ये लोग भी वेद विद्या तथा वैदिक धर्म की रक्षा के लिए ही ऐसा करते हैं। धन की आशा से अथवा समाज में प्रतिष्ठा के लिए ये कथाएँ नहीं चलाई जाती है।

गौतम के इसी सूत्र के अनुसार तार्किकरक्षा में वरदराज कहते हैं कि धर्मशास्त्र में ‘न विगृह्य कथां कुर्यात्’ यह निषेध वाक्य कहा जाता है अर्थात् जल्प और वितण्डा नहीं करनी चाहिए किन्तु इस निषेध वाक्य का तात्पर्य यह है कि अनुचित उद्देश्य को लेकर विजय की इच्छा से शिष्ट आस्तिकों के साथ इन कथाओं को नहीं करना चाहिए किन्तु अवसर पर अशिष्ट एवं दुर्विनीत नास्तिकों के साथ उसे निरस्त करने

6 वचनविधातोऽर्थविकल्पोपपत्त्या छलम्। न्या.सू., 1/2/10

7 साधर्म्यवैधर्म्याभ्यां प्रत्यवास्थानं जातिः। न्या.सू., 1/2/18

8 विप्रतिपत्तिरप्रतिपत्तिश्च निग्रहस्थानम्। न्या.सू., 1/2/11

9 यथोक्तोपपन्नश्छलजातिनिग्रहस्थानसाधनोपालम्भो जल्पः। न्या.सू., 1/2/2

10 विजिगीयुर्जल्पवितण्डाभ्यां प्रत्यवस्थेयः। न्या.पा., 1/2/1, पृ. 47

11 ताभ्यां विगृह्य कथनम्। न्या.सू., 4/2/51

विगृह्य इति विजिगीषया, न तत्त्वबुधुत्सयेति।

तदेतद् विद्यापासनार्थम् न लाभपूजाख्यात्यर्थमिति। वा.भा., 4/2/41, पृ. 434

के लिए जल्प तथा वितण्डा कथा का आश्रय लेना अनुचित नहीं है।
[12]

यही मत जयन्त का भी है कि मुमुक्षुओं के लिए भी जल्प होता है इसको उदाहरण के माध्यम से स्पष्ट करते हैं- एक गुरु जो शिष्यगणों से घिरा है वह तत्त्व का उपदेश दे रहा था, तभी वहाँ एक विद्वदाभास नामक दुष्ट हँसते हुए अहङ्कारपूर्वक कहता है कि आन्वीक्षिकी सीधे सादे लोगों को प्रिय लगने वाली फलतः ठगने वाली विद्या है। कहाँ है वेद और कहाँ है वेद का प्रामाण्य? कहाँ है आत्मज्ञान और कहाँ है अपवर्ग?

ऐसी परिस्थिति में यदि गुरु उस अनार्य पण्डिताभास की अपेक्षा करें, पृथक् विषय चलने के कारण यदि साधन मन में न आ पाये, और वह उस अमान्य को चुप भी न करा पाये, गुरु वहाँ से उठकर चला जाए तो उसके शिष्यगण तो यही सोचेंगे कि जिससे हम तत्त्वज्ञान प्राप्त कर रहे थे वह गुरु बाहर से आए अन्य पण्डित से पराजित हो गए अतः यह व्यर्थ ही है। इस प्रकार की परिस्थिति आ जाने पर जल्प व वितण्डा का प्रयोग किया जाता है [13], इसलिए गौतम ने जल्प व वितण्डा की मोक्षशास्त्र के पदार्थों में गणना की है, उपदेश दिया है।

परिहार

भाष्यकार कहते हैं यद्यपि छल आदि स्वतन्त्र रूप में किसी अर्थ के साधक नहीं होते तथापि ये तत्त्व की रक्षा में सहायक होते ही हैं अतः अर्थ की सिद्धि में अङ्ग हैं। ये स्वतन्त्र रूप से साधन नहीं होते [14] किन्तु प्रमाणों से अर्थ की स्थापना के कारण अङ्ग हो जाते हैं तथा यह अपने पक्ष की रक्षा के लिए होते हैं वस्तुतः ये प्रतिषेध करके दूसरे पक्ष के प्रहार से अपने पक्ष की रक्षा करते हैं सूत्रकार ने भी कहा है कि जिस प्रकार बीज के अङ्कुर की रक्षा के लिए काँटे वाली शाखा बाड का आवरण होती है उसी प्रकार तत्त्वज्ञान की रक्षा के लिए जल्प तथा वितण्डा होते हैं [15] और जो प्रमाणों से प्रतिपक्ष का खण्डन होता है उसमें छल आदि सहकारी होते हैं इस कारण से छल आदि जल्प के अङ्ग हैं जिसके कारण इनका ग्रहण किया गया है किन्तु स्वतन्त्र रूप से साधन नहीं।

12 न च 'न विगृह्य कथां कुर्यात्' इत्यादिभिः जल्पवितण्डयोर्निषेधः शङ्कनीयः नास्तिक निराकरणार्थम् अवश्यकर्तव्यत्वेन तद्वितरविषयत्वान्निषेधस्य तदुक्त-तत्त्वा इत्यादि। तार्किकरक्षा, प्रथम अध्याय

13 योऽसावस्माकमाचार्यः प्रख्यातो न्यायवित्तमः।

अद्यत्वागत्य सोऽन्येन पण्डितेन पराजितः॥

तच्छ्रुत्वा जन इतरोऽपि सत्यक्षस्य शैथिल्यात्सपदि तमेव मानुयासीत्।

तत् नूनं परिभवभूमिकामगह्यां नेतव्यः सदसि स वाक्दूकपाशः॥

तद्विघातघटने निरर्गलं जल्पमन्त्रमुपदिष्टवान् मुनिः।

आनुषङ्गिकमपि प्रयोजनं तस्य रागिजनतासु वर्णितम्॥ न्या.म., एकादश आहिक, वाद प्रकरण, पृ. 618

14 तदेवमङ्गीभूतानां छलादीमुपादानं जल्पे, न स्वतन्त्राणां साधनभावः। न्या.म., 1/2/2, पृ. 62

15 तत्त्वाध्यवसायसंरक्षणार्थं जल्पचित्तण्डेबीज शाखावरणवत्। न्या.सू., 4/2/50

इस विषय में वार्तिककार का मत भाष्यकार के मत से बिल्कुल भिन्न है। वार्तिककार के अनुसार छल, जाति, निग्रहस्थान पक्ष की रक्षा के लिए होने से भी अङ्ग नहीं होते क्योंकि छल आदि अयुक्त उत्तर हैं और जो अयुक्त उत्तर है वह स्थापना या प्रतिषेध के लिए समर्थ नहीं हो सकता। [16]

वार्तिककार के इस मत पर पूर्वपक्षी आक्षेप करता है कि यदि ये छल, जाति, निग्रहस्थान, स्थापना तथा प्रतिषेध के साधन अथवा अङ्ग नहीं होते तो इनका ग्रहण ही क्यों किया गया है?

परिहार

अपने आपको विजयी करने के लिए अर्थात् साधन का नाश करने के लिए छल आदि का ग्रहण किया गया है। [17] जैसे धर्म चिह्न के उदाहरण में पत्थर के धर्म चिह्न को जल में डूबाकर तथा लकड़ी के धर्म चिह्न को जल में बहता हुआ दिखाकर विशेष धर्म सम्प्रदाय के व्यक्ति ने अपने आपको विजयी करने का प्रयास किया। उसी प्रकार जल्प में भी छलादि के द्वारा अपने आपको विजयी करने का प्रयास किया जाता है इसके साथ ही वार्तिककार यह भी स्पष्ट कर देते हैं कि वाद में भी इसका प्रयोग हो सकता है किन्तु भ्रान्तिपूर्वक ही छल आदि का प्रयोग किया गया हो, जहाँ जान-बूझकर छल आदि का प्रयोग किया गया हो वह स्वतः जल्प व वितण्डा हो जाता है। [18] वार्तिककार पुनः कहते हैं कि छल, जाति, निग्रहस्थान साधन अथवा अङ्ग नहीं होते। इसका प्रयोग तो तब किया जाता है जब किसी परिस्थिति में पक्षी सत्य को तो जानता है किन्तु कुछ समय तक उलझ गया हो तो प्रतिपक्षी को छल प्रयोग द्वारा आकुलित करके सत्य की स्थापना कर सकता है। [19]

वाचस्पति मिश्र जो अधिकतर वार्तिककार के मत का अनुसरण करते हैं और उनके मत को और अधिक स्पष्ट करते हुए प्रतीत होते हैं, वह इस मत में भी वार्तिककार से पूर्ण सहमत हैं और इस विषय में कहते हैं- छल, जाति, निग्रहस्थान आदि निषेध के लिए ही प्रयुक्त होते हैं, वह जल्प और वितण्डा में प्रयुक्त हो जाने पर साधन व अङ्ग नहीं बन सकते, इसका उदाहरण देकर और अधिक स्पष्ट करते हैं- जैसे हजारों अन्धे एक घर की सुरक्षा नहीं कर सकते [20] उसी प्रकार छलादि भी साधन व अङ्ग नहीं बन सकते। पुनश्च यहाँ भी वह प्रश्न उपस्थित होता है कि फिर क्यों इनका ग्रहण किया गया तो वाचस्पति मिश्र कहते हैं कि- कभी वादी साधु साधन का प्रयोग कहता है कि किन्तु प्रतिवादी के द्वारा व्याकुल मति वाला होकर ठीक उत्तर नहीं दे पाता तो साधन या अङ्ग न होने पर भी छल आदि का प्रयोग कर देता है। छल आदि का प्रयोग से दूसरे का

16 अङ्गभाव इति चेत् अथापीदं स्यात् यत् तत् प्रमाणतर्कैः साधनं यश्चोपालम्भः तस्यैतानि प्रयुज्यमानानिछलजातिनिग्रहस्थानानि रक्षणार्थत्वादङ्गभवन्तीति एतदप्ययुक्तोत्तरत्वादेवानुपपन्नम्। न्या.वा., 1/2/2

17 साधनविघातार्थम् साधनं विहनिष्यामीत्यनषाधियापहतः प्रवर्तते। न्या.वा., 1/2/2

18 यत्र चैतानि छलजातिनिग्रहस्थानानि प्रयुज्यन्ते, न स वादः। न्या.वा., 1/2/2

19 साधुसाधनोपादाने च परेणाकुलीकृतबुद्धिः छलादीनि प्रयुङ्क्ते। न्या.वा., 1/2/2

20 न हि सहस्रेणाप्यन्धैः पाटच्चरेभ्यो गृहं रक्ष्यत इत्यर्थः। न्या.वा., 1/2/2, पृ.

पराजय भी सम्भव है अतः तत्त्व की रक्षा के लिये इनका प्रयोग होता है, यह अशिष्ट आचरण नहीं है। [21]

वात्स्यायन (400 ई.पू.) काल से वाचस्पति के काल में (960 ई.) न्यायसूत्र के मत में कोई परिवर्तन नहीं आया अर्थात् न्यायसूत्र में जो आचार्य गौतम ने कहा, उसी को भाष्य वार्तिक आदि द्वारा स्पष्ट और स्पष्ट ही किया जाता रहा अर्थात् उस पर निरन्तर और अधिक बल दिया जाता रहा सम्भवतः जो यह बातें बौद्धों को समझाने के लिए कही गईं वह इसको समझ नहीं पा रहे थे अथवा समझाना नहीं चाहते थे, इसी कारण एक ही बात को और अधिक दृढ़ता पूर्वक रखा जा रहा था, इसी शृंखला में मञ्जरीकार ने भी जल्प में छल आदि के प्रयोजन को स्पष्ट किया- छल, जाति और निग्रहस्थान दोषपूर्ण उत्तर होने से साधन और उपालम्भ में यद्यपि उपयोगी नहीं हैं तथापि कहीं पर कभी तो उपयोग हो ही जाता है, जैसे कि कोई वादी इस बात को विश्वासपूर्वक जानता है कि मेरा पक्ष बहुत पुष्ट है और दूसरा पक्ष बहुत कमजोर है परन्तु इतना होने पर भी उसे कभी परप्रयुक्त साधन में दोष दिखाने की युक्ति बुद्धि में स्फुरण नहीं होती और अपने पक्ष का साधन भी एकदम स्मरण नहीं हो रहा हो, अब उसे छल आदि के प्रयोग से दूसरे को उलझा कर अपने पक्ष की रक्षा करनी होती है इसलिए अपने पक्ष की रक्षा के लिए इन छल आदि का उपयोग होता है। ये दूसरे के पक्ष को कमजोर कर अपने पक्ष की रक्षा करते हैं। [22] यदि प्रतिपक्षी यह जान जाए कि छलकारी की गई है तब वह स्वयं ही पराजित हो सकता है तथापि पराजय की अपेक्षा वहाँ की जनता को सन्देह में डाल देना ही श्रेयस्कर होगा। [23]

अन्ततः वार्तिककार यही कहते हैं कि छल आदि का प्रयोग तत्त्वज्ञान की इच्छा करने वाले को नहीं करना चाहिए अपितु विजय की इच्छा वाले को ही करना चाहिए क्योंकि इन्हीं का प्रयोग मुख्य रूप से वाद, जल्प एवं वितण्डा का भेद कराता है। [24]

श्री वेदान्तदेशिक ने भी न्यायपरिशुद्धी में कहा कि वीतराग कथा में वादी अथवा प्रतिवादी को अपने पक्ष के स्थापन के प्रसङ्ग में जब कोई मार्ग नहीं मिलता है तो वह प्रतिद्वन्द्वी को व्यामोहित करके अपने पक्ष में विजय प्राप्त करना चाहता है अथवा वह अपने प्रतिद्वन्द्वी के सदृश अपना पक्ष बनाये रखना चाहता है, तदर्थ वह जान बूझकर दोष दूषित वाक्यों का प्रयोग भी करता है क्योंकि

विजिगीषु का लक्ष्य विजय की प्राप्ति है, न कि तत्त्वज्ञान की प्राप्ति है। [25]

निष्कर्ष

न्यायसूत्रकाल (150 ई.पू.) [26] व उससे पूर्व का काल बिल्कुल उसी प्रकार था जिस प्रकार जल्प को समझाने के लिए उद्धृत किया गया धर्म चिह्न से सम्बन्धित उदाहरण दिया गया है, विशेष धर्म सम्प्रदाय का व्यक्ति छल आदि का प्रयोग करते हुए अपने मत को उचित स्थापित करना चाहते थे। उसी प्रकार बौद्ध आदि नास्तिक दर्शन भी अपने सिद्ध को सर्वश्रेष्ठ सिद्ध करने के लिए वाद का नाम देते हुए जल्प व वितण्डा किया करते और छल, जाति, निग्रहों के द्वारा विजयी प्राप्ति करते अन्त में उस कथा प्रकार को वाद का नाम देते होंगे इसी कारणवश सूत्रकार भाष्यकार, वार्तिककार सभी बारम्बार इस बात पर विशेष जोर देते हैं कि “छल आदि का प्रयोग जल्प व वितण्डा में किया जाता है।” इन्हीं के प्रयोग व अप्रयोग से कथा वाद, जल्प व वितण्डा हो जाती है। [27]

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. न्यायदर्शनम्- अनन्तकाल ठाकुर, न्यायसूत्र न्यायभाष्य न्यायवार्तिक न्यायवार्तिकतात्पर्यटीका न्यायवार्तिकतात्पर्यटीकापरिशुद्धि सहित (सं.) मिथिला विद्यापीठ, मुजफ्फरपुर, 1967
2. न्यायदर्शनम्- नारायणमिश्र, न्यायदर्शन, चौखम्बा संस्कृत भवन प्रकाशन, 1983
3. न्यायभूषण- भासर्वज्ञ भाष्यकार, वासुदेव सूरीक, संजय प्रकाशन, 2005
4. न्यायमञ्जरी- जयन्तभट्ट, कामेश्वर सिंह, संस्कृत विद्यालय दरभंगा, 2002
5. न्यायवार्तिक- श्री निवास शास्त्री चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान

21 साधुसाधनोपादाने च वादिना कृते परेण प्रतिवादिना जिगीषुणाकुलिबुद्धिर्द्राक् पारमार्थिकमुत्तरप्रतिपद्यमानश्छलादीनि प्रयुङ्क्ते यथाकथञ्चित् प्रयोगेण। तद्नेन प्रकारेण तत्त्वसंरक्षणार्थत्वात् नासदाचारः। ना.वा.टी., 1/2/2, पृ. 284

22 स्पक्षे द्रढिमान च क्वचिसवरे परप्रयुक्ते साधने दूषणं सपदि न पश्यति स्वपक्षसाधनं च झटिति न समरति तदा छलादिभिरप्युपक्रम्य परभिभवत्यात्माना। न्या.म., एकादश आहिक, वादप्रकरणम्

23 एकान्तपराजघादरं सन्देह इति युक्तमेव तत्प्रयोगेण स्फुटाटोपकरणम्। वही, पृ. 617

24 न पुनरेतानि तत्त्वबुभुत्सुना वक्तव्यानि किं तु विजिगीषुणेति। न्या.वा., 1/2/2

25 विजिगीषुकथायान्तु गत्यन्तरमलभमानस्य परव्यामोहेनेनापि पाक्षिकविजयः समत्वं वा सम्भवेदिति बुद्धिपूर्वकदुष्टप्रयोगसम्भवः। न्यायपरिशुद्धी, 2/2, विजिगीषुकथानिरूपणम्

26 इन्साइक्लोपीडिया ऑफ इंडियन फ्लासफी, बीब्लियोग्राफी, भाग-एक, पृ. 101

27 पक्षप्रतिपक्षपरिग्रहः छलजातिनिग्रहस्थानप्रयोगायोगाभ्यां भिद्यमानो वादो जल्पो वितण्डा च भवति। न्या.वा., 1/2/2, पृ. 378